॥ओ३म्॥

बढ़ती आर्य घटता आर्यत्व

लेखक
पण्डित वेद प्रकाश शास्त्री

प्रकाशक
डी० ए० वी० सी० से० सकूल
फाजिलका. 152123

।।ओ३म्।।

बढ़ते आर्य घटता आर्यत्व

लेखक
पण्डित वेद प्रकाश शास्त्री
एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत)
शास्त्री भवन, 4-E, कैलाश नगर,
फाजिलका- १५२१२३ (पंजाब)

प्रकाशक
डी.ए.वी.सी.से. स्कूल
फाजिलका-१५२१२३

विक्रमी संवत्-२०५२
ईस्वीय सन्-१९९६

प्रथम संस्करण -१०००
मूल्य- श्रद्धानुसार

आभार प्रदर्शन

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।।

सभी प्रकार के दानों में वेद प्रचार के लिए दिया गया दान अपना विशेष महत्व रखता है।

मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि "बढ़ते आर्य घटता आर्यत्व" पुस्तक प्रकाशित होकर जन–जन तक पहुंचे! परन्तु अर्थाभाव के कारण इसका प्रकाशन न हो पा रहा था। एक अन्य कारण यह भी था कि यह पुस्तक समीक्षात्मक होने के कारण कोई भी इसे प्रकाशित करने से कतरा रहा था। यद्यपि समालोचना सुझाव पूर्ण, रचनात्मक एवं आत्मनिरीक्षणपरक है तथापि इसकी ओर ध्यान कौन देता है।

एक दिन की बात है कि जब श्री सुभाष चन्द्र जी जसूजा एडवोकेट, प्रबन्धक डी.ए.वी.सी.से. स्कूल फाजिलका संयोगवश विद्यालय में पधारे तो मैंने उन से प्रार्थना की कि वह इसके प्रकाशन के कार्य को सम्पन्न करने में सहयोग करें। जब यह वार्तालाप हो रहा था, उस समय इसी विद्यालय के प्रिंसिपल श्री राजकृष्ण जी ग्रोवर भी विद्यमान थे। मेरी प्रार्थना सुनकर उन्होने बड़ी तत्परता से इस प्रकाशन के कार्य को सम्पन्न करने का सहर्ष बीड़ा

उठाया। कहने लगे "शास्त्री जी! मेरे होते हुए चिन्ता न करें।आपके द्वारा लिखित पुस्तकें यदि विद्यालय नहीं प्रकाशित करेगा तो और कौन करेगा इसका उत्तरादायित्व मुझ पर डाल दें।"

श्री ग्रोवर साहब के द्वारा कहे गए यह शब्द मुझ जैसे डूबते व्यक्ति के लिए तिनके का सहारा ही नहीं अपितु प्रकाशन की नैया पार लगाने वाले थे। विश्वास ही नहीं हो रहा कि ऐसा नाविक हमारे बीच में ही विद्यमान है जो गन्तव्य स्थल तक पहुंचा देगा। मैं भावविभोर हो उठा। हृदय प्रसन्नता से भर गया ! मैं सोच नहीं पा रहा कि किन शब्दों में उनके प्रति आभार व्यक्त करूं उनके इस साहसिक कार्य की जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोडी है। मेरे लिए दुष्कर इस कार्य को उन्होंने सुकर बना दिया।

परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना है कि प्रिंसिपल श्री ग्रोवर साहब की यह उदारतापूर्ण दानशीलता एवं कर्तव्य निष्ठा की भावना निरन्तर बनी रहे। उनके इस सहृदयतापूर्ण प्रकाशन कार्य के लिए मैं उनका सदैव आभारी रहूंगा ।

हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए—

८ दिसम्बर, १६६५ — विदुषामनुचरः

वेदप्रकाश शास्त्री

।। ओ३म् ।।

बढ़ते आर्य घटता आर्यत्व

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपना समस्त जीवन वैदिक धर्म का सन्देश देने में लगा दिया उनके बाद भी यह कार्य निरन्तर चलता रहे इसके लिए उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की ।

महर्षि ने कहा–"आर्य का अर्थ है– श्रेष्ठ अर्थात् वह व्यक्ति जो श्रेष्ठ कार्य करता है, वह आर्य है। चाहे वह कोई भी व्यक्ति क्यों न हो।" इस प्रकार राम–कृष्ण आदि सभी महापुरूष आर्य ही थे।

यह धारणा अत्यन्त भ्रमोत्पादक है कि आर्य बाहर से आये. । नहीं, आर्य बाहर से नहीं आये अपितु इस भारत भूमि के ही निवासी थे,और हैं। इसीलिए इस भारत भूमि का सर्वाधिक प्राचीन नाम आर्यावर्त है। इससे प्राचीन इस भूमि का अन्य कोई भी नाम दृष्टिगोचर नहीं होता ।

महर्षि दयानन्द ने कहा था ' श्रेष्ठ लोागें के समाज का नाम ही आर्य समाज है' महर्षि ने आर्य समाज में प्रविष्ट हुए व्यक्तियों के लिए वैदिक सिद्धान्तों की स्थापना की

थी जिन पर चल कर ही व्यक्ति आर्य कहला सकता है। सत्यार्थ प्रकाश में इन सिद्धान्तों का स्पष्ट उल्लेख है।

परन्तु आजकल यह कसौटी बदल गई है। अब तो जो भी व्यक्ति आर्य समाज का सदस्य बन गया, बस वह आर्य है। चाहे वह आर्य सिद्धान्तों पर चलता हो या नहीं। इस आधार पर यदि हम यह कहें कि 'आर्य बढ़ रहे हैं लेकिन आर्यत्व घट रहा है' तो यह अनुचित न होगा। इसके लिए हमें अग्रलिखित तथ्यों पर विचार करना होगा

१. आहार–व्यवहार – हमारा खान–पान, आहार आदि बदल रहा है। महर्षि दयानन्द ने धूम्रपान का निषेध किया है लेकिन फिर भी बहुत से आर्य धूम्रपान करते हैं। यहां तक कि प्रधान और मन्त्री भी , फिर साधारण सदस्यों की तो बात ही क्या? कई सज्जन तो वृद्धावस्था को प्राप्त हो गए हैं। सारी आयु आर्य समाज के सम्पर्क में व्यतीत हुई परन्तु फिर भी बीड़ी सिग्रेट जैसा दुर्व्यसन भी न छोड़सके। आर्य समाज में आकर भी उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि क्या रही ? बस यही न ! कि अन्तः करण जलाते रहे और उस पर कालिख की परत चढ़ाते रहे, दोष बताते रहे लेकिन स्वयं उसी लत में फसें रहे । इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसे लोग नाम से तो आर्य रहे परन्तु उनमें

आर्यत्व का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया ।

ऐसे लोगों को कैसे कहा जाय कि वे आर्य सामाजी हैं। जैसे दूसरे धूम्रपान करते हैं वैसे ही यह भी। आर्य समाज से बाहर निकले और धूम्रपायी बन गए। जब आर्य समाज की स्टेज पर बैठे, बड़ें—बड़ें व्याख्यान भी दे दियें।

भोजन में भी पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। मांस और शराब का सेवन भी लुक—छिप कर चलता रहता है। हां, इसमें धूम्रपान जितना खुलापन नहीं होता। अब इस विषय-पर आर्य समाज में चर्चा भी नहीं होती कि वह व्यक्ति क्या खाता है क्या पीता है ऐसे व्यक्ति जो समाज में उच्चाधिकारी हैं या सदस्य हैं अपने घर, दूकान, दफतर अथवा अन्तरंग मित्रमंडली में बड़े खुलेपन से अपेय एवं अभक्ष्य चीजों का सेवन करते हैं।

परिणामतः लोगों की श्रद्धा ऐसे व्यक्तियों के प्रति घट जाती है। भले ही ऊपर से कुछ न कहें लेकिन ऐसे लोगों के प्रति आदर की भावना नहीं रहती । पीठ पीछे ऐसे लोगों की निन्दा होना आम बात है।

क्योंकि आजकल वोटों का समय है अतः ऐसे दुर्व्यसनी ~~बर्चस्व~~ आर्य (?) अपने समर्थकों के बल पर अपना बर्चस्व बनाए रखते हैं और सब कुछ पूर्ववत् चलता रहता है। आर्य भी कहलाते रहते हैं चाहे आचरण इसके विपरीत

ही क्यों न हो ठीक ही कहा है—

रिंद के रिंद रहे , हाथ से जन्नत भी न गई ।

२. संस्कार — आर्यों में संस्कारों का प्रचलन घटता जा रहा है। अधिकतर आर्य परिवारों में केवल हवन आर्य पद्धति से होता है शेष सारा कार्य सनातनी पद्धति से चलता रहता है। घर में विवाह संस्कार हो तो बस हवन आर्य पद्धति से होता है बाकि कार्य पौराणिक पद्धति से सम्पन्न होता है। यदि किसी घर में मृत्यु हो जाती है तो दसवें दिन हवन हो जाता है। इससे पूर्व गरूड़ पुराण का पाठ चलता रहता है। अस्थि प्रवाह तो गंगा में ही जाकर होता है । ९० प्रतिशत से भी अधिक आर्यजन अस्थि विसर्जन हेतु हरिद्वार जाते हैं।

बालक के जन्मदिवस पर प्रायः केक काटे जाते हैं और मोमवत्तियां जलती हैं। कई परिवारों में हवन तो होता है परन्तु बाद में केक काटने का कार्यक्रम भी आयोजित होता है।

इस स्थिति में आर्यत्व की रक्षा कैसे हो सकेगी। यह चिन्ता का विषय है ?

३. आर्य सिद्धान्त— आर्य सिद्धान्तों का ज्ञान भी ह्रासोन्मुख है। इसके प्रति रूचि उत्तरोत्तर घटती जा रही है। साप्ताहिक सत्संग या दैनिक सत्संगों में बहुत कम समाजों

में आर्य सिद्धान्तों की चर्चा होती हैं या किसी निश्चित विषय को लेकर विचार या व्याख्यान होता है। प्रायः सत्संगों में सन्ध्या, हवन प्रार्थना और भजन का कार्यक्रम ही सम्पन्न होता है। इतने में ही कर्तव्य की इतिश्री समझ ली जाती है।

आर्य समाजों के वार्षिकोत्सव भी कम होते जा रहे हैं जिससे प्रचार निरन्तर कम होता जा रहा है और जन–जन तक आर्य सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं पहुंच पाता है। लोग सिद्धान्तो से अनभिज्ञ होते जा रहे हैं जिस आर्यत्व का ह्रास होना स्वाभाविक है।

४. स्वाध्याय– आर्य सिद्धान्तों को जानने की एक विधि तो यह है कि हम आर्य समाज के सत्संगों में आर्य सिद्धान्तों पर व्याख्यान सुनें। दूसरी विधि यह है कि हम स्वयं स्वाध्याय करके उनका ज्ञान प्राप्त करें। विविध प्रकार की पुस्तकों का अध्ययन करें।

आर्य सिद्धान्तों की श्रेष्ठता को पहचानने के लिए हमें विभिन्न मतमतान्तरों का तुलनात्मक अध्ययन भी करना होगा।पुराण, कुरान,बाइबिल तथा अन्य अनेक धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करके ही उनकी यथार्थता का ज्ञान हो सकता है।

यदि इस प्रकार से हम गहन स्वाध्याय नहीं करते

तो हमें भी उन लोगों की हां में हां मिलाना पड़ेगा जो यह कहते नहीं थकते कि सभी धर्म एक हैं, सभी एकता का पाठ पढ़ाते हैं, सभी का ईश्वर एक है, सभी को अन्त में ईश्वर के पास ही पहुंचना है । परन्तु इन चिकनी चुपड़ी बातों के पीछे वे इन विभिन्न मतों की कमियों को छिपा जाते हैं या उन्हें स्वयं ही इनका ज्ञान नहीं होता । वह कौन सी कसौटी है जिस पर धर्म की सत्यता को परखा जाय ? इस कसौटी का ज्ञान हमें सत्यार्थ प्रकाश पढ़ कर ही हो सकता है।

परन्तु आजकल आर्यो में भी स्वाध्याय की कमी होती जा रही है। जिससे आर्यो को स्वयं ही वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं है फिर वे दूसरों को उनके बांरे में कैसे बतायेंगे। सत्यासत्य धर्माधर्म का निर्णय करने में वे स्वयं असमर्थ होंगें।

ऐसे अधकच्चरे ज्ञान वाले लोगों की समाज में कमी नहीं है। कई लोगों को समाज या परिवारों में हवन कराने का शौक होता है। उन्हें संस्कृत का ज्ञान तो होता नहीं। व्याख्याएं नई से नई करने की कोशिश करते हैं। इसका परिणाम यह होता है – ''कही की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा।''

एक आर्य समाज के मन्त्री जी हवन कराते हुए शिव

संकल्प के मंत्र बोल रहे थे और उसकी व्याख्या कर रह थे – "शिव जी महाराज की जो कैलाश पर्वत पर रहते हैं"। इन मंत्री महोदय को इतना भी नहीं पता कि यहां "शिव" शब्द "संकल्प" का विशेषण हैं, संज्ञा (विशेष्य) नहीं। क्या विशेषण है? क्या विशेष्य है? इसके बारे में उन्होंने सोचा ही नहीं। बस अपनी हांके जा रहे हैं। कभी पढ़ने की चेष्टा ही नहीं की कि इन मंत्रों का अर्थ क्या है ? कैलाश पर्वत के शिव का वर्णन वेद में कहां से आ गया ? वेद में लौकिक इतिहास नहीं है। लेकिन उन्हें इससे क्या ? कुछ न कुछ बोलना ही है और जनाब उल्टा सीधा बोले जा रहे हैं। अर्थ का अनर्थ किए जा रहे हैं। कभी स्वाध्याय किया हो, शब्दार्थ जानने का प्रयत्न किया हो तो कुछ पता भी चले। व्याकरण पढ़ी नहीं फिर अर्थ का अनर्थ क्यों न हो ? इसीलिए किसी ने कहा है –

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्।।

हे पुत्र ! यद्यपि बहुत न पढ़ फिर भी व्याकरण अवश्य पढ़ ले जिससे स्वजन (अपने लोग) श्वजन (कुत्तों का समूह),सकल(सारा) शकल (टुकड़ा, भाग), सकृत् (एक बार) शकृत् (विष्ठा, गोबर) न हो जाय।

अभिप्राय यह है कि जब व्याकरण का ज्ञान होगा तो ऐसा अशुद्ध उच्चारण न हो सकेगा और न ही अर्थ का अनर्थ होगा।

जिस शब्द अर्थ के बारे में हमें ज्ञान नहीं है उसके बारे में कोई टीका टिप्पणी करना हमारी अज्ञानता का ही सूचक होगा। अतः ऐसी स्थिति में चुप रहना ही अधिक श्रेयस्कर है।

अतः सभी आर्यो को स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में कहा है–

स्वाध्यायान्मा प्रमदः।।

स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। क्योंकि बिना स्वाध्याय के आर्य धर्म की रक्षा असम्भव ही है। तभी तो ऋषि ने कहा है –

''वेद का पढ़ना–पढ़ाना, सुनना–सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।''

५– हिन्दी संस्कृत का पठन–पाठन– समस्त भारत को एकता के सूत्र में पिरोने वाली भाषा हिन्दी ही है। हिन्दी भाषा को बोलने और समझने वालों की संख्या सर्वाधिक है। विभिन्न भाषा–भाषी लोगों में यह सम्पर्क सूत्र का काम करती है। इसीलिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार

किया गया है। परन्तु इतना होते हुए भी हिन्दी को वह स्थान नहीं मिल पाया जो उसे मिलना चाहिए था। आज भी हिन्दी उपेक्षा एवं तिरस्कार का शिकार है।

कहीं भी किसी भी कार्यालय में चले जाइये हिन्दी के दर्शन दुर्लभ हो जायेंगे। अनेक सरकारी कार्यालय एंवं. विभाग समय–समय पर हिन्दी दिवस, हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा आदि का आयोजन करते हैं। बस तभी थोड़ा बहुत हिन्दी का प्रयोग होता है और फिर वर्ष भर के लिए छुट्टी।

हिन्दी प्रदेशों में भी हिन्दी का प्रयोग कम होता है। जो भी महत्वपूर्ण चीजें हैं वे सब अंग्रेजी में ही होती हैं। निचले दर्जे पर अवश्य ही हिन्दी का प्रयोग होता है। सब जगह अंग्रेजी का ही बोलबाला है। आजतक अंग्रेजी अपना वर्चस्व बनाए हुए है। जो कि मानसिक दासता का ही प्रतीक है।

सरकार तो इसके प्रचार प्रसार के प्रति उपेक्षा कर ही रही है। इसके साथ ही आर्य लोग भी स्वयं इसके व्यावहारिक पक्ष की और से उदासीन होते जा रहे हैं। हिन्दी का प्रयोग दिनोदिन घटता जा रहा है। चिट्ठी–पत्री, दुकान, विज्ञापन आदि में हिन्दी का व्यवहार अत्यल्प है। घर में होने वाले विभिन्न उत्सवों में जो कार्ड छपते हैं वह अंग्रेजी में होते हैं। दीपावली या नववर्ष के शुभकामना या

अन्य बधाई कार्ड अंग्रेजी में होते हैं। हां, मृत्यु के कार्ड बहुत कुछ अवश्य ही हिन्दी में छपते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है– ''जन्म अंग्रेजी में, मृत्यु हिन्दी में''। पता नहीं शोकपत्र अंग्रेजी में क्यों नहीं छापते ? कहीं संस्कृत की तरह हिन्दी को भी मृतभाषा (Dead Language) समझ कर प्रयोग न करते हों ? आखिर मृत व्यक्ति के लिए मृत भाषा का प्रयोग ही श्रेयस्कर है और बुद्धिमत्तापूर्ण भी ! या कहीं इस कहावत के आधार पर हिन्दी का प्रयोग न करते हों – 'अन्त मति सो गति।' कि चलो सारा जीवन अंग्रेजी का प्रयोग किया अब तो हिन्दी का प्रयोग हो जाय। शायद इसी में कोई भालई छिपी हो ! आर्य समाज फाजिलका के प्रधान श्री सुभाष चन्द्र जी जसूजा ने एक दिन बताया कि एक सज्जन उस व्यक्ति के किसी भी उत्सव में सम्मिलित नहीं होते जिसके निमन्त्रण पत्र अंग्रेजी में छपे हों। लेकिन उन्हीं सज्जन ने उनकी माता जी की मृत्यु पर शोक–सन्देश अंग्रेजी में भेजा। कितनी हैरानी वाली बात है ! यह तो वही बात हुई –

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।

महार्षि दयानन्द ने आर्यभाषा (हिन्दी) के पढ़ने–पढ़ाने पर बहुत बल दिया है। लेकिन अन्य भाषाओं की उपेक्षा नहीं की। वह सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में

लिखते हैं—

"जब पांच वर्ष के लड़का—लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं का भी।" इस से स्पष्ट है कि ऋषि ने देशी विदेशी भाषाओं के सीखने पर रोक नहीं लगाई अपितु सीखने के लिये प्रेरणा ही दी है। जितनी भी भाषांए पढ़ लिख सकें अच्छी बात हैं परन्तु हिन्दी की उपेक्षा करके नहीं।

संस्कृत भाषा का तो और भी बुरा हाल है। एक और तो सरकार की ओर से इसकी पढ़ाई समाप्त की जा रही है, दूसरी आर्य लोग भी इसके पढ़ने—पढ़ाने की और घ्यान नहीं दे रहे। कितने आर्य हैं जो अपने बच्चों को संस्कृत पढ़ाते हैं या पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

पंजाब में तो सरकार की और से केवल छठी से आठवीं तक ही संस्कृत को पाठ्यक्रम में रखा गया है, इसके बाद नहीं। दसवीं में अतिरिक्त विषय के रूप में छात्र ले सकते हैं। अधिक नम्बर आने पर हिन्दी के स्थान पर संस्कृत के नम्बर जुड़ जाते हैं। परन्तु जब पढ़ाने का प्रबन्ध ही न हो तो छात्र कहां से पढ़ेगें? साथ ही संस्कृत के लिए पीरियडों की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। स्कूलों में पीरियड नहीं लगते। यदि कोई छात्र पढ़ना भी चाहे तो अपने उत्तरदायित्व प्र पढ़े। विद्यालय की और से कोई प्रबन्ध नहीं होता। सरकारी विद्यालयों में संस्कृत समाप्त

प्रायः है।

केवल आर्यसमाज और सनातन धर्म के स्कूलों में ही थोड़ा बहुत संस्कृत पढ़ाने का प्रबंध है। जहां छात्र संस्कृत पढ़ सकते हैं। लेकिन यहां पर भी इसके पढ़ाने के लिए मैट्रिक में बोर्ड की और से नियमित पीरियड की व्यवस्था न होने से छात्रों को ट्यूशन के सहारे रहना पड़ता है। यदि किसी विद्यालय में लगता भी है तो वह अपर्याप्त होता है।

इस विषम स्थिति में संस्कृत का प्रचार कैसे हो ? यह एक चिन्ता का विषय है। हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत में हैं। जब हम संस्कृत के पठन–पाठन की ओर ध्यान ही नहीं देंगे तो फिर प्रचार कैसे होगा ?

संस्कृत न जानने के कारण ही संध्या–हवन के मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध नहीं हो पाता। गीता, रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि शास्त्रों का अध्ययन संस्कृत ज्ञान के बिना अत्यन्त कठिन है। हम वेदमन्त्रों और श्लोकों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते। सन्धिविच्छेद कर सकना और भी कठिन है। अर्थ समझना तो बहुत दूर की बात है। यद्यपि आजकल इन संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है जिससे बहुत कुछ समस्या हल हो सकती है, परन्तु फिर भी संस्कृत का सामान्य ज्ञान

अत्यावश्यक है जिससे हम उनका भलीभांति शुद्ध रूप में पाठ कर सकें, उच्चारण कर सकें।

आर्य समाज एवं आर्य संस्थाओं को चाहिए कि वे समय –समय पर सरल संस्कृत शिक्षा शिविरों का आयोजन करें जिसमें संस्कृत के आवश्यक नियमों की शिक्षा दी जाए एंवं उच्चारण का ज्ञान कराया जाए। जिन्होंनें संस्कृत नहीं पढ़ी है उन्हें भी इन शिविरों के आयोजन से संस्कृत का ज्ञान हो सकेगा।

६. सत्संग— आर्य समाज के सत्संग में सन्ध्याहवन के समय प्रायः लोग वेदमन्त्रों का उच्चारण भी करते जाते हैं और साथ ही जलपात्रों में जल डालते जाते हैं। घृतपात्र में घी डालते हैं। कभी समिधाएं जोड़ते हैं। पुस्तकें उलटते या खोलते रहते हैं। यज्ञ के बाद 'यज्ञरूप प्रभु हमारे' यज्ञप्रार्थना भी बोलते रहते हैं और साथ ही यज्ञपात्र इकट्ठे करते जाते हैं, अन्य सामान इधर–उधर रखते रहते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि हमारा ध्यान बाहरी चीजों की और अधिक लगा रहता है, ईश्वरोपासना की और कम। ऐसी स्थिति देख कर कबीर का यह कथन स्मरण हो आता है—

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख मांहि।
मनुआं तो चहुं दिसि फिरे यह तो सुमिरन नाहि।।

हमारे हाथ माला के स्थान पर यज्ञ सम्बन्धी चीजों को जोड़ने और उठाने में लगे रहते तथा जीभ मुख में फिरती रहती है और मन चारों ओर भटकता रहता है। अतः यह प्रभु का स्मरण तो न हुआ। योगशास्त्र में कहा गया है–

ध्यानं निर्विषयं मनः।।

मन का विषयों से रहित हो जाना ही ध्यान है। हम इन बाहरी चीजों से मन को हटा लें तभी सच्ची प्रार्थना उपासना हो सकती है।

महार्षि दयानन्द संस्कार विधि में लिखते हैं– "मन्त्रों का पाठ और अर्थ एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरूष ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करे और सब उसमें ध्यान लगा कर सुनें और विचारें।"

एक अन्य स्थान पर ऋषि लिखते हैं– "वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें।"

"जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक्–पृथक् मौन करके बैठे रहें, कोई बातचीत हल्लागुल्ला न करने पावें। सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्न ब दन रहें। विशेष कर्मकर्ता और कर्म कराने वाले शान्ति, धीरज और विचार

पूर्वक क्रम से कर्म करें और करावें।" इस प्रकार चाहिए तो यह कि हर एक चीज का प्रबन्ध सन्ध्या अथवा यज्ञ प्रारम्भ होने से पूर्व ही भलीभांति कर लें। जिससे बीच में कुछ भी इधर—उधर न करना पड़े। दूसरे यह निश्चित व्यक्ति को करना चाहिए। सभी बीच में न तो बोलें, न कुछ कहें। बस उनका ध्यान ईश्वर भक्ति की ओर होना चाहिए। जब संध्या हवन समाप्त हो जाय तभी यज्ञपात्रादि उठाएं, बीच में नहीं। सभी आर्यजन शान्ताचित्त बैठे रहें।

सत्संग में यज्ञकुण्ड या मन्त्र से दूर बैठे हुए सज्जन अखबार या पत्रिकाएं पढ़ते रहते हैं जो शोभा नहीं देता। ऐसे कार्य से उनकी यज्ञादि के प्रति उपेक्षा ही प्रकट होती है और साथ ही यह व्यवहार यज्ञ के प्रति अश्रद्धा का भी सूचक है।

यही व्यक्ति जब गुरूद्वारे में जाते हैं तो वहां चुपचाप बैठे रहते हैं, वहां कुछ नहीं बोलते। इसका मतलब यही है कि ऐसे लोगों की यज्ञादि कार्यो के प्रति रूचि, श्रद्धा एवं विश्वास नहीं है या अत्यल्प है। वरना वे अवश्य ही दत्तचित्त होकर बैठते। कई लोग तो बस औपचारिकतावश ही सम्मिलित होते हैं।

७. अन्तः कलह— आर्यसमाज एवं आर्य संस्थाओं में परस्पर कलह बढ़ता जा रहा है। कई स्थानों पर अपने—अपने

समर्थकों के गुट (ग्रुप) बने हुए हैं। कभी कोई बातचीत होती है तो यही कहते हैं अमुक व्यक्ति अमुक गुट का है तथा वह उस गुट का आदमी है। इसी प्रकार यह आर्यसमाज आर्यप्रतिनिधि सभा के अमुक गुट से संबंधित है और वह आर्य समाज या व्यक्ति उसके ग्रुप से संबंध रखता है। समर्थन के आधार पर ही किसी व्यक्ति के आर्यत्व का मापदण्ड होता है।

गुरूकुल कांगड़ी जैसा विश्वविद्यालय भी इससे अछूता नहीं रहा है। इसके संबंध में श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक आर्यमर्यादा द्वारा अनेक बार उल्लेख किया जा चुका है। अतः इसकी विस्तृत चर्चा की यहां आवश्यकता नहीं है गुरुकुल ज्वालापुर में मुझे स्वयं तनावपूर्ण स्थिति देखने को मिली। एक बार मैं वहां परीक्षा देने के संबंध में जानकारी हेतु गया था तो गुरूकुल के अन्दर प्रवेश करने वाली मुख्य सड़क पर अन्दर जाकर दो व्यक्ति बन्दूकें लिए बैठे थे। एक और एक जीप खड़ी थी। उन्होंने पूछा—'क्यों आए हो ? किससे मिलना है ?' मेरे बताने पर उन्होंने केवल इतना ही कहा कि तुरन्त यहां से चले जाओ वरना कुछ भी गड़बड़ी हो सकती है। विवशतः मुझे वहां से आना पड़ा।

कई बार आर्य समाज में भी चुनावों को लेकर लोग उग्ररूप धारण कर लेते हैं और अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए ओछी हरकतों पर उतर आते हैं। इससे आर्य समाज

की छवि धुमिल होती है। लेकिन ऐसे लोगों को इसकी कोई परवाह नहीं होती। दूसरों के लिए प्रेम और भाईचारा का उदाहरण उपस्थित करने के बजाय हम स्वंय कलह में फंस जाते हैं।

प्रत्येक गुट अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए अपने गुट के समर्थक सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने का प्रयत्न करता है। चाहे वे आर्य विचार धारा के हों या नहीं बस उनके गुट का समर्थक होना ही काफी है। जहां पर कसौटी ही यह हो वहां आर्यत्व के विकास की कल्पना करना केवल निराशा जनक ही होगा। आर्य समाज के सदस्य बनने से आर्यो की संख्या में तो वृद्धि हो जाती है परन्तु आर्यत्व की भावना घटती जाती है। क्योंकि ऐसे लोगों को आर्यसिद्धान्तों से कोई प्रेम नहीं होता।

इस कलह के कारण वास्तविक आर्यजन पीछे हट जाते हैं क्योंकि उनकी कोई नहीं सुनता।

-

८. **आर्य संस्थाएं** – आज आर्य समाज की अनेक शिक्षण संस्थाएं है। इनके अतिरिक्त बहुत सी शिक्षणेतर संस्थाएं हैं। परन्तु इन संस्थाओं में कितने आर्य विचारधारा के लोग हैं। केवल उंगली पर गिने जाने योग्य ही मिलेंगे। इसका मूल कारण यह हैं कि नियुक्ति के समय तो वह कह देते

हैं कि हम आर्य समाजी हैं या हमारे पिता जी, दादा जी आर्य समाजी थे। परन्तु वस्तुतः वह आर्य नहीं होते ,आर्य चोला पहन लेते हैं। प्रारम्भ में हो सकता है कुछ दिन के लिए हाजिरी लगवाने आर्य समाज में पहुंच जायें। परन्तु जब नौकरी पक्की हो गई फिर वे आर्य समाज से मुंह फेर लेते हैं। एक अन्य कारण यह भी है कि नियुक्ति के समय हम सगें, संबंधी, सिफारिश आदि को ही प्रमुखता देते हैं, आर्य विचारधारा को नहीं । उसे केवल नाम मात्र को ही देखते हैं। इसके बाद हम यह आशा करें कि लोग आर्य विचारधारा के हों तो ऐसी आशा करना हास्यास्पद ही है।

६- धर्मशिक्षक का अभाव– आर्य शिक्षण संस्थाओं में धर्मशिक्षक का कोई प्रबन्ध नहीं होता । इसके लिए न तो आर्य समाजें ही ध्यान देती हैं और न ही शिक्षण संस्थाएं। फिर आर्य विचारधारा का प्रचार कहां से हो। कई संस्थाओं में हिन्दी या संस्कृत के पद पर आर्य विचारधारा का शास्त्री सरकारी ग्रेड पर रख लेते हैं। परन्तु उसके पीरियड भी सरकारी नियमानुसार लगें होते हैं। ऐसी स्थिति में धर्मशिक्षा के लिए उसके पास समय ही नहीं होता।

एक और बात यह भी है कि धर्मशिक्षा किस समय दी जाय। क्योंकि इसके लिए कोई निर्धारित पीरियड नहीं होता । अतः प्रातः काल प्रार्थना के समय ही कुछ ज्ञान

दिया जा सकता है। ईसाइयों के विद्यालयों में नियमित कार्यक्रम चलता है। सिक्खों के विद्यालयों में भी न्यूनाधिक कार्य होता रहता है। परन्तु आर्य शिक्षण संस्थाओं में नहीं चल पाता । क्योंकि इसके प्रति हम उतनी रूचि नहीं दिखाते । कोई विधिवत् नियमित योजना नहीं बनाते। न ही इसके लिए कुछ खर्च करने को तैयार होते हैं।

एक अन्य बात यह भी है कि धर्मशिक्षा का प्रचार शिक्षण संस्था के प्रमुख अर्थात् मुख्याधयापक या प्रधानाचार्य पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि वह इस कार्य में रूचि ले तो ही प्रर्याप्त कार्य हो सकता है। लेकिन कितनी संस्थाओ में ऐसे व्यक्ति हैं। कम से कम नियुक्ति के समय यह अवश्य देखना चाहिए कि वह आर्य विचार धारा का हो। जिस संस्था में ऐसे आर्य व्यक्ति हैं वहां कुछ न कुछ कार्य अवश्य चलता रहता है लेकिन ऐसा बहुत कम स्थानों पर दिखाई पड़ता है जहां के प्रमुख आर्य विचार धारा के हों ।

कई लोग यह प्रश्न भी कर सकते हैंकि आर्य विचार धारा के लोग मिलते ही नहीं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या हमने आर्य विचार धारा के लोगों को तैयार करने का प्रयत्न किया ? तो उत्तर यही होगा नहीं,कभी नहीं । जब धर्मशिक्षा

की कोई व्यवस्था ही नहीं , उसके लिए कुछ कर ही नहीं रहे तो आर्य कहां से तैयार हों। जब हम पूर्ण मनोयोग से इसके लिए कमर कसेंगें तभी यह कार्य हो सकता है।

प्रत्येक शिक्षण संस्था में धर्मशिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। सारे शिक्षक उसके अन्दर सम्मिलित हों। छात्रों को प्रेरित किया जाय तब जाकर यह कार्य हो सकता है।

इसका प्रारम्भ प्रायमरी स्कूल से होना चाहिए। तत्पश्चात् हाई स्कूल और कालेज में प्रयत्न किया जाय फिर कुछ सफलता की आशा की जा सकती है।

धर्मधिक्षा के प्रभाव का वर्णन ६.१.६३ को सार्वदेशिक में प्रकाशित एक लेख के आधार पर किया जा सकता है।

दयानन्द मथुरादास कालेज मोगा के प्रिंसिपल के नाम एक पाकिस्तानी का पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें वह सज्जन लिखते हैं– ''जनाब आली गुजारिश है कि बन्दा १६३१ में आपके कालेज में पंढा था । धर्मशिक्षा के पीरियड में बन्दा ने सत्यार्थ प्रकाश पड़ी थी। इस किताब के मुताल्या ने मेरी जिन्दगी में एक बहुत बड़ा इन्कलाब पैदा कर दिया। जिसकी वजह से मैं मुसल्लसल मसायब का शिकार हो रहा हूं । ४३ साल गुजरे मेरी इस तहकीफ पर।मैं मारें खाता हूं। मुलाजमत से निकला जाता हूं। मुझ पर पत्थरों की बौछार की जाती है , मेरा राशन पानी बन्द किया जाता

है। मेरे रिस्तेदार मुझे समझाते हैं, पड़ोसी मुझें सताते हैं लेकिन मैं किस तरह से इन्कार करूं। मैं जान तो दे सकता हूं किन्तु इमान नहीं दें सकता । नहीं छोड़ सकता, नहीं छोड़ सकता। किसी भी कीमत पर सच्चाई को नहीं झुठला सकता"।

यह है धर्मशिक्षा का प्रभाव! सभी छात्र भले ही इतना प्रभावित न हों लेकिन यदि कुछ छात्रों का जीवन भी उज्जवल बन जाय तो भी प्रयत्न सार्थक समझना चाहिए।

यह कार्य असम्भव तो नहीं परन्तु कठिन अवश्य है। श्रमसाध्य है। यदि हम इस कार्य को सम्पन्न कर सकें तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी और बस्तुतः लोग आर्य बन सकेगें साथ ही आर्य सिद्धान्तों से परिचित भी।

वरना कहने के लिए तो आर्य संस्थाओं की वृद्धि हो रही है, आर्य भी बढ़ रहे हैं परन्तु आर्यत्व का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है।

आओं हम सब मिल कर बैठें और इस समस्या पर विचार करें कि धर्मशिक्षा के प्रचार का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय?

१० खण्डन मण्डन—आजकल खण्डन—मण्डन का नाम लेने से ही हम घबरा जाते हैं। परन्तु यह नहीं विचार करते कि खण्डन का अर्थ क्या है । आइए, इस पर विचार करें।

जब घड़ा खरीदने जाते हैं तो उसे ठोक बजा कर देखते हैं, उलटते पलटते हैं, कभी ऊपर , कभी नीचे , कभी अन्दर ,कभी बाहर देखते हैं। पसन्द नहीं आता तो कह देते हैं। ठीक नहीं है, नहीं लेना । दूसरा दिखाओं । वह भी पसन्द नहीं आता तो उठकर चल देते हैं । यह कहते हुए कि ठीक नहीं,पसन्द नहीं यह भी तो खण्डन है । आप उस घड़ें को बुरा बता रहेहैं। तरह तरह के दोष निकाल रहे हैं। यह भी तो घड़ें का खण्डन ही है।

फिर धर्म के बारे में क्यों नहीं विचार करते। अच्छा है, बुरा है । ग्राह्य है, अग्राह्य है। धर्म के नाम पर कहीं अधर्म का आचरण तो नहीं कर रहे । यदि बुरा है आप उसे बुरा कहते हैं तो यह खण्डन ही होगा । फिर इससे चिड़ क्यों।

दर्जी के पास कपड़ें ले जाते हैं। वह उनके आवश्यकतानुसार खण्ड—खण्ड बना लेता है । इन खण्डों के विना अभीष्ट वस्त्र तैयार नहीं हो सकता । कपड़ें के टुकड़ें बनाना उनका खण्डन और वस्त्र का मिलना उसका मण्डन है।

किसान खेत में हल चलाता है, गुड़ाई करता है, क्यारियां बनाता है, फसल में से घासादि अनिच्छित पौधे निकाल देता है । यह खण्डन ही तो है।

डाक्टर चीर फाड़ करता है और अनावश्यक चीजों को शरीर से निकाल देता है। इसके विना शरीर स्वस्थ नहीं हो सकता । अनावश्यक अंशो को शरीर से निकाल देना ही खण्डन है।

इसी प्रकार धर्म में आई कमियों को हटा देना ही खण्डन है और सही या ग्राह्य चीजों का समर्थन करना ही मण्डन है। यदि गंभीरता पूर्वक विचार किया जाय तो प्रतीत होता है कि खण्डन के विना हमारा काम चल ही नहीं सकता । बुरी वस्तु को बुरी कहना ही पड़ेगा और अच्छी को अच्छी । बस यही खण्डन मण्डन है। खण्डन के द्वारा हम उसे अग्राह्य ठहराते हैं और मण्डन के द्वारा ग्राहय।

विभिन्न मतमतान्तरों का खण्डन–मण्डन अब समाप्त प्रायः है। महर्षि दयानन्द के पश्चात् पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. शान्ति प्रकाश, स्वामी दर्शनानन्द, पं. रामचन्द्र देहलवी, अमर स्वामी, पं. बिहारीलाल जी शास्त्री आदि शास्त्रार्थ महारथियों का युग समाप्त हो गया है। अब शास्त्रार्थ नहीं होते । अतः खण्डन–मण्डन समाप्त हो गया।

महर्षि दयानन्द के पश्चात् देश में अनेक मत फैले हैं और फैल रहे हैं। परन्तु आर्य समाज ने इस ओर ध्यान

नहीं दिया और वे धड़ल्ले के साथ फल फूल रहे हैं। आर्य समाज मन्दिर में तो गिनती भर के लोग ही आते हैं। जब कि उन मतों के सत्संगों में पैर रखने को जगह नहीं मिलती जो आर्य समाज अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, पाखण्ड, आडम्बर आदि कुरीतियों को दूर करने चला था, वह आज शान्त है, चुप है, विश्राम की स्थिति से गुजर रहा है, कोई चिन्तित नजर नहीं आता कि अनेक मतमतान्तर बढ़ रहे हैं। मतमंतान्तरों की आलोचना में पुस्तकों का प्रकाशन भी बन्द सा ही है। खण्डनात्मक लेख भी शायद ही कभी प्रकाशित होते हों। वास्तविकता तो यह है कि आर्य समाज की पत्रिकाएं ही आलोचनात्मक लेख प्रकाशित करने को उद्यत नहीं होतीं और न पुस्तकें ही प्रकाशक प्रकाशित करते हैं।

खण्डन–मण्डन के समय तो अधिकतर आर्य समाजी भी नाक भौं सिकोड़नें लगते हैं।कई तो यहां तक कह देते हैं सभी धर्म अच्छे हैं। अतः खण्डन करने में कोई औचित्य नहीं।

ऐसे स्वाध्यायहीन अज्ञानी और दुराग्रही लोगों की कमी नहीं । उनको यह पता ही नहीं कि आर्य समाज क्या मानता है। उसके सिद्धान्त क्या हैं।

एक आर्य समाज में एक सज्जन बोल रहे थे –

'ईश्वर ने हमें वेद, पुराण आदि शास्त्रों का ज्ञान दिया। यह सुनकर दूसरे सज्जन ने कहा—' ईश्वर ने केवल वेदों का ज्ञान दिया है पुराणों का नहीं । वह तो बाद में लिखे गए हैं और उनमें अनेक बातें वेद विरुद्ध भी हैं।

अगले रविवारीय सत्संग में पूर्ण तैयारी के साथ उन्होंने पुनः पुराणों के अवैदिक एवं अश्लील स्थलों के उद्धरण प्रस्तुत किए और कहा कि ये वैदिक कैसे हो सकते हैं।

सत्संग में बैठे हुए आर्य समाज के उपप्रधान जी बीच में ही बोल पड़ें—'ऐसा कैसा हो सकता है। ऐसी अश्लील बातें नहीं लिखी हो सकतीं । आप गलत कह रहे हैं, ऐसा कभी नहीं हो सकता ।

ऐसे भलेमानसों को कौन समझाए कि उपर्युक्त कथन पूर्णरूपेण सत्य है । वह सुनें तब न,अन्त में वह उपप्रधान जी नाराज होकर चले गए। यह है आर्य समाज के अधिकारियों का हाल,साधारण लोगों का तो कहना ही क्या ।

ऐसे लोगों को सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता । पढ़नें लिखने का कष्ट नहीं करते । फिर भी आर्य समाजी हैं।

आर्य समाज क्या मानता है। इन सिद्धान्तों का वर्णन करना, समर्थन करना मण्डन है और क्या नहीं मानता

है यह सिद्ध करना खण्डन है। वस्तुतः खण्डन के विना मण्डन हो ही नहीं सकता ।

अनेक पुराण एक दूसरे का खण्डन करते हैं । स्वामी शंकराचार्य ने जैन, बौद्ध मतों का डट कर खण्डन किया, शास्त्रार्थ किया और वैदिक धर्म का मण्डन किया। कबीर जैसे अनपढ़ व्यक्ति ने भी खण्डन का सहारा लिया उन जैसा जबरदस्त खण्डन करने वाला दिखाई नहीं पड़ता उन्होंने हिन्दू—मुसलमान दोनों को खरी खरी सुनाई। कोई लिहाज नहीं किया । श्री गुरूनानक देव जी और श्री गुरू गोविन्द सिंह जी ने भी अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, मूर्तिपूजा , पाखण्ड आदि का खण्डन किया । भले ही आजकल कबीर पन्थी और सिखमतानुयायी मूर्तिपूजा नहीं करते परन्तु फिर भी तमाम अन्धविश्वास उनमें भी बढ़ गए हैं । कबीर पन्थी गुरू की चारपाईऔर खंड़ाऊंको भी माथा टेकते हैं और सिख गुरूग्रन्थ साहब को। यह भी मूर्ति पूजा का ही भिन्न रूप है।

खण्डन की परम्परा बहुत पुरानी है इसके विना काम चल ही नहीं सकता । हां, इतना अवश्य है कि हम केवल खण्डनात्मक व्याख्यान ही न देते रहें अपितु उससे कहीं अधिक सिद्धान्तों का मण्डन आवश्यक है। प्रकरण

वश सिद्धान्तों के विरूद्ध बातों का वर्णन भीउचित है जिससे अपने सिद्धान्त की स्पष्टता में निखार आए। सिद्धान्तौ विरूद्ध कौन सी बाते हैं उनका चित्रण करना ही होगा। उदाहरणतः यदि हम त्रैतवाद का वर्णन कर रहे हैं तो अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, प्रकृतिवाद आदि इन एकांगी वादों के दोषों का भी वर्णन आवश्यक है। तुलनात्मक वर्णन करके ही त्रैतवाद की श्रेष्ठता सिद्ध की जा सकती है। इसी प्रकार जब हम निराकार ईश्वर का वर्णन करेगें तो साकार का प्रश्न आयगा ही । उस समय यह सिद्ध करना ही पड़ेगा कि ईश्वर को साकार मानने में क्या दोष हैं और निराकार मानने में क्या औचित्य ?

हां, इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि हम खण्डन के लिए खण्डन न करें या केवल खण्डनात्मक ही व्याख्याान न दें अपितु किसी विषय का तुलनात्मक वर्णन करते हुए विपरीत बात के दोष बताए जा सकते हैं। यह दोष बताना खण्डन ही है। इस खण्डन से बचा नहीं जा सकता।अन्धविश्वासपूर्ण बातों का खण्डन सीधा भी किया सकता है जैसे मूर्तियों का दूध पीना, भला जड़ मूर्ति दूध कैसे पी सकती है। और यदि यह मान लिया जाय कि मूर्ति दूध पी भी गई तो सारे मन्दिर अपवित्र भी हो

गये होगें क्योंकि मूर्तियों ने टट्टी पेशाब भी तो किया होगा। इसके विना तो रहा नहीं जा सकता। मूर्तियां बाहर तो इसके लिए जा नहीं सकती क्योंकि उन्हें ताले के अन्दर बन्द कर दिया जाता है। अतः वे वहीं पर गन्दगी फैलायंगी जहां पर बिराजमान हैं, ऐसे अन्धविश्वासों का निराकरण आवश्यक है,

आर्य समाज में आए दोषें का खण्डन करना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि अन्य मतमतान्तरों का। ऐसा नहीं होना चाहिए कि अपने दोषों को देखें ही न।

आर्य समाज अबोहर के पुरोहित जी ने एक घटना सुनाई । एक सज्जन आर्य समाज के २० वर्षो से मन्त्री या प्रधान बनते चले आ रहे थे। सायं काल का समय था। पुरोहित जी उनके घर गए। मन्त्री जी अन्दर घण्टी बाजाते हुए आरती कर रहे थे। पुरोहित जी की आवाज सुनकर घर्ण्टी बजानी बन्द कर दी। रसोईघर से पत्नी की आवाज गूंज उठी– आरती क्यों बन्द कर दी। मन्त्री जी फिर घण्टी बजाने लगे। आरती समाप्त हुई। मन्त्री जी बाहर आए और पुरोहित जी से कहने लगे–'मैं घ्रण्टी भी बजाता जाता हूं और गायत्री मन्त्र का पाठ भी करता रहता हूं। जब मन्त्री जी ही ऐसा करें तो बाकी का क्या बनेगा।

श्रीराम पथिक मदनानन्द वानप्रस्थाश्रम मुजफफर

नगर उ.प्र. का कहना है–' मेरी आंखों देखी घटना है। आर्य समाज रोपड़ पंजाब के मंत्री तब सर्वप्रिय गौरीशंकर जी थे। अचानक उनके घर पहुंच गया तो बालक ने दरवाजा खोल दिया तो देखा कि दीवारों पर जो गणेश, लक्ष्मी,आदि के चित्र लगें थे उनको धूप दिखाते हुए मन ही मन कुछ गुनगुना रहे थे।'

'शायद खतौली(मुजफफर नगर) उ.प्र. आर्य समाज के उपप्रधान जी एक बार मुझसे पूछने लगें संस्कारविधि का लेखक कौन है' महर्षि दयानन्द की मुख्य–मुख्य रचनाओं का ज्ञान कम से कम अधिकारियों को अवश्य होना चाहिए।

११. पुरोहित का अभाव– अधिकतर आर्यसमाजों में पुरोहित का अभाव है, एक तो पुरोहित मिलते नहीं और यदि मिल भी जाय तो समाजे उन्हें टिका नहीं पाती या वे स्वयं टिक नहीं पाते। वस्तुतः दोनों ही कारण हैं। कहीं पर तो ऐसा पुरोहित चाहते हैं जो प्रधान या मन्त्री का पिछलग्गू हो। उनकी हां में हां मिलाता रहे या उनके गुट से सम्बन्धित रहे। अच्छा बुरा जैसा भी करें, पुरोहित जी सत्य वचन महाराज' कह कर स्वीकार कर लें।

दूसरे, आर्यसमाज में पुरोहित के लिए स्थिरता न होने से भी वह नहीं टिक पाता।२–४ साल के बाद अन्य

आर्य समाज में चला जाता हैं।

तीसरे, आर्य समाज की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। जिन समाजों की आय अच्छी है वे अधिक वेतन दे देती हैं। जिससे पुरोहित टिक जाता हैं। कम आय वाली समाजो में उसका टिकना कठिन रहता है। जब कभी अधिक वेतन वाली समाज नजर आई, पुरोहित उधर चला गया।

चौथा कारण यह भी है कि पुरोहित को वर्तमान मंहगाई के अनुसार वेतन नहीं दिया जाता । यहां तक कि सरकारी पद पर लगा हुआ चपरासी भी अधिक वेतन लेता है। वार्षिक वृद्धि भी नहीं दी जाती । बस २—४ साल के बाद कुछ वेतन बढ़ा दिया जाता है। अवकाश भी नहीं मिलता और यदि मिलता भी है तो वह भी बहुत कम। भविष्य निधि की कोई व्यवस्था नहीं होती । जिससे पुरोहित को अपना भविष्य अंधकारमय प्रतीत होता है । कई समाजों में तो यदि पुरोहित को कई वर्ष हो जायं तो लोगों को ऊब महसूसू होने लगती है और वे चाहते हैं कि नया पुरोहित आए।

नए पुरोहित के रखने का उद्देश्य यह भी होता है कि वेतनमान फिर नए सिरे से प्रारम्भ हो जाता है। इस

प्रकार पुरोहित को अधिक वेतन नहीं देना पड़ता है। वेतन उतना का उतना ही बना रहता है। यदि पुरोहित कई वर्ष तक रहता तो वेतन बढ़ाना पड़ता । जिसकी बचत हो जाती है।

इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हो सकते हैं जो विचारणीय हैं।

वस्तुतः देखा जाय तो समाज में पुरोहित की अत्यन्त आवश्यकता है। उसके अभाव में संस्कार यज्ञादि विधिपूर्वक सम्पन्न नहीं हो पाते क्योंकि लोगों को उस संस्कार के बारे में पूर्णज्ञान नहीं होता । अतः सामान्य हवन किया और कार्य समाप्त । कई समाजों में प्रधान, मन्त्री या अन्य सदस्य हवन कराते हैं और कहते हैं कि पुरोहित की आवश्यकता ही नहीं, इतने से कार्य के लिए। यह तो हमने ही करा लिया फिर क्यों रखें पुरोहित। इतना वेतन देना पड़ता है, रिहायश का प्रबन्ध करना पड़ता है, बिजली पानी पर खर्च होता है। पुरोहित न रखने से इस सब की बचत है। यदि हम इस पर गम्भीरता से विचार करें तो विदित होता है कि पुरोहित के विना पूर्णरूपेण आर्य समाज का प्रचार होना असम्भव है। आर्य सिद्धान्तों पर वही प्रकाश डाल सकता है।

दूसरी बात आर्य समाज में पुरोहित होने पर वह

२४ घण्टें खुला रहेगा। पुरोहित सेवक न होने के कारण कई आर्य समाज बन्द पड़े रहते हैं। कई समाजों में केवल सेवक होता है वह प्रातः सायं समाज में आकर चला जाता है। कई समाजों में सेवक भी नहीं होता। न ही दैनिक सत्संग होता है। कहीं कहीं रविवारीय सत्संग ही होता है और उसके बाद सप्ताहभर के लिए बन्द हो जाते है।

ऐसी स्थिति में कैसे हो प्रचार। इसका एकमात्र हल यह है कि मिलजुल कर सहयोग करें। अधिकतर स्थानों पर आर्य समाज और उससे सम्बन्धित कई शिक्षण संस्थाए होती हैं। यदि सभी मिलकर सहयोग करें तो यह कार्य सुचारू रूप से चल सकता है। सभी संस्थाए मिलकर पुरोहित को आर्थिक सहायता दें, कुछ आर्य समाज दे तो पुरोहित रखा जा सकता है। वह पुरोहित धर्मशिक्षक के तौर पर शिक्षा दें। संस्कृत की शिक्षा भी दे सकता है। आर्य समाज में सत्संग यज्ञ, संस्कार एवं प्रचार करें। इस प्रकार आर्य समाज और शिक्षण संस्था दोनों की समस्या हल हो सकती है। आर्य परिवार श्रद्धानुसार राशन दे सकता है, भोजन करा सकते हैं। इस प्रकार पुरोहित को रखने में कोई कठिनाई नहीं होगी। ऐसी सुविधा होने पर पुरोहित भी टिक सकेगा।

यदि आर्यजन यह निश्चय कर लें कि पुरोहित

रखना ही रखना है तो कोई भी कारण ऐसा नहीं है जिसका समाधान न हो सके। बस इच्छाशक्ति होनी चाहिए। फिर सफलता ही सफलता है। ईसाई अपने प्रचारकों को पूर्ण सहयोग देते हैं। उन्हें किसी तरह का परायापन अनुभव नहीं होने देते । राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के भी तो प्रचारक हैं। वह भी इसी आधार पर कार्य करते हैं।

जब हम यह समझ लेते हैं कि पुरोहित भी अन्य नौकरी करने वालो की तरह है, हम उसके प्रति सहयोगात्मक रूख क्यों अपनाएं, उसे तो वेतन मिलता ही है। फिर हम कुछ क्यों दें। जब कि बहुत से लोग सनातन धर्म मन्दिरों में जाते हैं तो आटा आदि कुछ न कुछ देकर ही आते हैं। हमें चाहिए कि पुरोहित को भी घर का सदस्य ही समझें।

पुरोहित के महत्व पर विचार करें। क्योंकि उसकी प्रेरणा से ही लोगों में आर्यत्व की भावना सुदृढ़ की जा सकती है। सदस्यों के पास इतना समय नहीं होता कि हर एक से सम्पर्क कर सकें या परिवारों में जा सकें। जबकि पुरोहित पहुंच सकता है।

पुरोहित के स्थायित्व के लिए ऐसा भी हो सकता है कि आर्य प्रतिनिधि सभाएं स्वयं पुरोहित की नियुक्ति करें। वेतन निश्चित कर दें। आर्य समाज वेतन सीधे दे और

उसका विवरण सभा को दे दें अथवा आर्य समाज सभा को भेज दें और सभा परोहित को दे। यह सुविधानुसार किया जा सकता है। यदि किसी कारणवश आर्य समाज और पुरोहित में अनबन हो या अन्य कोई कारण हो तो सभा पुरोहित का स्थानान्तरण अन्य समाज में कर दें।इस प्रकार पुरोहित को सेवाकाल से हाथ भी नहीं धोना पड़ेगा। उसे अपना भविष्य धुंधला नजर नहीं आयगा। सभा द्वारा पुरोहितों का वेतनमान, वेतनवृद्धि, महंगाई भत्ता और भविष्यनिधि आदि को विधिपूवर्क पुरोहित पद हेतु योग्यता सहित निर्धारित कर देना चाहिए। मेरे विचार से इसकी तीन श्रेणियां होनी चाहिए। प्रथम– स्नातकोत्तर, द्वितीय– स्नातक, तृतीय– स्नातक से कम योग्यता । इसी के अनुसार वेतन की भी तीन श्रेणियां हों। आवास, बिजली, पानी, निःशुल्क हो। वेतन निर्धारण के समय इसका भी ध्यान रखा जा सकता है।

१२. वेदप्रचार और पारिवारिक सत्संग– प्रत्येक आर्य समाज के लिए वैदिक धर्म के प्रचार हेतु वार्षिकोत्सवों का आयोजन करना कठिन है। जो आर्य समाजें इनका आयोजन कर सकती हैं वे प्रशंसा की पात्र हैं परन्तु जिनके द्वारा ऐसा करना सम्भव नहीं है। उनके लिए प्रचार कार्य जारि रखने हेतु वैकल्पिक उपाय यही है। कि वे वेद प्रचार

सप्ताह का आयोजन करें। इसके लिए एक विद्वान् और एक भजनोपदेशक की आवश्यकता होती है।

वेद सप्ताह के अवसर पर जहां वेदमन्त्रों की व्याख्या की जाय वहां आर्यसिद्धान्तों पर भी व्याख्यान दिये जायं । विभिन्न विषयों पर विचार प्रकट किए जाने चाहिए आर्य समाज में तो प्रातः और रात्रि में प्रचार हो और दिन में किसी आर्य शिक्षण संस्था में कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाय जिससे छात्रों में भी नई चेतना आए।

इसके अतिरिक्त पारिवारिक सत्संगों के माध्यम से भी आर्य समाज का सन्देश पहुचाया जा सकता है। कई बार क्या होता है कि पारिवारिक सत्संग में मात्र संध्या हवन और भजन ही होते हैं। प्रवचन नहीं होते । जब कि किसी आर्य सिद्धान्त पर सरल शब्दों में प्रवचन अवश्य होना चाहिए। जिससे लोगों को धर्म की जानकारी मिल सके सत्संग सवा घण्टे से ड़ेढ़ तक का होना चाहिएं। अन्य मतावालिम्बयों के तो २ घण्टें से भी अधिक चलते हैं। सत्संग को रूचिकर बनाने के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए यदि समाज में पुरोहित होगा तो यह प्रचार कार्य सुगमता पूर्वक चलता रहेगा।

पारिवारिक प्रचार में स्त्री आर्य समाजों की भूमिका को भी दृष्टि विगत नहीं किया जा सकता । वे भी पर्याप्त

सहयोग कर सकती हैं। अतः पुरुष और स्त्री दोनों आर्य समाजें परस्पर सहयोग से प्रचार करें तो सुविधा रहेगी।

कई बार पारिवारिक सत्संग हम औपचारिकतावश ही करते हैं । उतना उत्साह नहीं होता और घर में भी उतने लोग ही एकत्र होते हैं जितने कि समाज में, अर्थात् बहुत कम संख्या में। इसके लिए विशेष प्रयत्न करें। सभी को बुलाएं। कई बार तो सारे आर्यजन ही नहीं पहुंचते जिस से सत्संग फीका रहता है। अतः सभी को पहुचंना चाहिए। आस पास के लोगों को तथा अन्य परिचित जनों को भी आमन्त्रित करना चाहिए तभी सत्संग का पूर्ण लाभ हो सकता है।

१३. परिवार को आर्य बनाओं— महर्षि दयानन्द ने कहा था— 'कृण्वन्तों विश्वमार्यम्' अर्थात सारे संसार को आर्य बनाओं । वस्तुतः आर्य बनाने की ईकाई व्यक्ति और उसका परिवार है। केवल एक व्यक्ति का ही आर्य होना पर्याप्त नहीं है अपितु समस्त परिवार को ही आर्य होना चाहिए। आर्य बनाने के लिए बच्चों को प्रारम्भ से ही आर्य समाज के सम्पर्क में रखना होगा तभी उन पर अच्छे संस्कार पड़ेगें।

परिवार के अन्दर भी हम समय समय पर आर्य पत्र पत्रिकाओं का पठन पाठन एवं किसी विषय पर चर्चा कर

सकते हैं। बच्चों को छोटी–छोटी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए। बच्चों के स्तर का अवश्य ध्यान रखना चाहिए वरना वे इससे उदासीन हो जायेंगे । आर्य महापुरूषों की जीवनियां भी काफी लाभप्रद रहेगी। धर्मशिक्षा तथा शिक्षाप्रद बालोंपयोगी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करें।तभी उनमें आर्यत्व का विकास हो सकता है इसके लिए हमें स्वयं भी प्रर्याप्त सजग रहने की आवश्यकता है।

हमें बच्चों को भी आर्य समाज के सत्संग में ले जाया करें जिससे उन्हें भी जाने की आदत पड़ें। कई लोग बच्चों को ले जाते हैं परन्तु बैठने के लिए प्रेरित नहीं करते। वे इधर उधर धमाचौकड़ी मचाते रहते हैं। चाहिए तो यह कि हम मन्त्र, गीत, भजन आदि बोलने के लिए उन्हें प्रेरित करें, उन से बुलवाएं। इस तरह उनका ध्यान सत्संग की ओर आकृष्ट होगा। आर्य कुमार सभा आदि के माध्यम से भी उन पर आर्य संस्कार ढ़ाले जा सकते हैं।

राजनीतिक

१४. राजनैतिक दृष्टिकोणों का वैभिन्न्य– आर्य समाज एक विशुद्ध धार्मिक संस्था है, राजनैतिक नहीं । अतः इसमें किसी भी राजनैतिक विचार धारा वाला व्यक्ति सम्मिलित

हो सकता है जो आर्य विचारों में विश्वास रखता हो। परन्तु कई समाजों में इसी के कारण टकराव भी बना रहता है लोग आर्य धर्म के आधार पर न सोचकर राजनैतिक दृष्टिकोण से सोचते हैं और उसें प्राथमिकता देते हैं, आर्य समाज को नहीं । जिसके कारण आर्य विचार धारा पीछे रह जाती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए राजनीति पहले और धर्म बाद में होता है।

हम देखते हैं कि सिख, ईसाई या मुसलमान भी विभिन्न दलों में होतें हैं परन्तु वे उन दलों में होते हुए भी अपने अपने मत या धर्म को सर्वोपरि स्थान देते हैं और कोई धार्मिक समस्या होने पर सभी का स्वर एक होता है। चाहे वे किसी भी पार्टी से सम्बन्धित क्यों न हों। श्रीराम मन्दिर और बाबरी मस्जिद का उदाहरण हमारे सामने है। इस मुद्दे पर सभी मुसलमान एक हैं जब कि हिन्दू बिखरे हुए हैं। श्री हरि मन्दिर साहब अमृतसर में ब्ल्युस्टार कार्यवाही के बिरोध में सभी सिखों का स्वर एक था । यद्यपि उनमें भी विभिन्न विचारों के लोग हैं।

आर्य समाज में ऐसी एकता नहीं हो पाती और विचार वैभिन्य बना रहता है क्योंकि हमारे आर्य विचार इतने सुदृढ एवं परिपक्व नहीं होते कि हम उन पर टिके रहें। स्वार्थवश अपनी आस्था अवसर आने पर बदल लेते हैं।

वस्तुतः हमें आर्य समाज को एक धार्मिक मंच के रूप में ही प्रमुखता देनी चाहिए, राजनैतिक रूप में नहीं हमें अपने विचारों पर सुदृढ़ रहना चाहिए। राजनीति के लिए धर्म की बलि नहीं दे देनी चाहिए।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्वहिन्दू परिषद की विचार धारा एवं मान्यताएं पौराणिक हैं। इससे संबंध रखने वाले लोग कहां तक आर्य कहला सकते हैं, उनके विचार कहां तक आर्यसमाजी है यह चिन्तनीय है।।

जब हम सुहढ़ आर्य विचारों वाले होगें तभी आर्यत्व की रक्षा हो सकती है।अन्यथा नहीं,हमारा परम धर्म है कि इस ओर अग्रसर हों।

१५. आर्य पत्रिकाएं एवं निष्पक्ष सम्पादक— आर्य समाज की अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। जिनमें से कुछ तो आर्य प्रतिनिधि सभाएं प्रकाशित करती हैं और कुछ स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित होती हैं। लेकिन इनका रूप रंग ,साज—सज्जा एवं आकार अत्यन्त साधारण होता है जो लोगों को आकर्षित नहीं कर पाता अनेक आर्यजन भी केवल इसलिए खरीदतें हैं कि आर्य समाज की पत्रिका है । अतः इन पत्रिकाओं को अपना स्तर ऊपर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए निन्नलिखित तथ्य विचारणीय हैं।—

१. स्तरीय लेखों का प्रकाशन— अच्छें २ लेखों के प्रकाशन की ओर ध्यान दिया जाय। लेख धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, सामयिक समस्याओं एवं अन्य उपयोगी विषयों पर हो सकते हैं।

२. कविताएं— धार्मिक, चरित्र निर्माण, जीवनी, समाज सुधार, भक्ति आदि विविध विषयों पर कविता, गीत, भजन आदि के प्रकाशन को प्रोत्साहन दिया जाय। लोक गीतों (सुधारात्मक) का अपना ही महत्व है। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर इन्हें पसन्द किया जाता है। संवादात्मक कविताएं भी प्रेरणाश्रोत बन सकती हैं।

३. हास्य व्यंग्य— धर्म एवं समाज में फैली कुरीतियों का हास्य व्यंग्य कविता, लेख तथा एकांकी द्वारा मधुर कटाक्षपूर्ण वर्णन किया जा सकता है। ऐसी कविताओं एवं लेखों को कोई भी पत्रिका प्रोत्साहन नहीं देती। कभी सोचती भी नहीं कि ऐसे विषय प्रकाशित हों। जिन बातों को हम सीधे खण्डन द्वारा इतना प्रभावशाली नहीं बना सकते जितना व्यंग्यात्मक लेखों, कविताओंके एवं एकांकियों द्वारा बनाया जा सकता है। ऐसे शिक्षाप्रद विषयो का प्रकाशन अत्यंन्त महत्वपूर्ण है।

४. कहानी लेखन— समाज में फैली अंधविश्वास, रूढ़िवाद

पाखण्ड आदि को कहानी के माध्यम से दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। 'सुमन सौरभ' (सरिता प्रकाशन) ने एक बार 'अन्धविश्वास निवारण विशेषांक' निकाला था जिसमें कहानियों और लेखों के द्वारा अन्धविश्वासों को दूर करने की कोशिश की गई थी। बच्चे और बड़ें सभी कहानियां पढ़ना पसन्द करते हैं फिर क्यों न ऐसी कहानियां प्रकाशित की जायं जिससे कुरीतियों को दूर करने में सहायता मिले। आर्य पत्रिकाएं ऐसे लेखकों को प्रोत्साहन दें जो इस प्रकार की रचनाएं प्रदान कर सकें।

मुंशीप्रेम चन्द की कहानियों एवं उपन्यासों में तमाम तरह की कुरीतियों को उजागर किया गया है जो समाज में घुन की तरह लगी हुई हैं गूढ विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी कहानी बन सकती है।

५. विविध विषयों का समावेश—पत्रिकाओं में विविध विषयों एवं स्तम्भों का आयोजन होना चाहिए। यथा वेदमन्त्र व्याख्या, सूक्ति–सुधा, महिलाजगत्, बालजगत्, अध्यात्म चर्चा, शंका समाधान, जीवन परिचय, इतिहास के पन्ने, रामायण या महाभारत के आदर्श पात्र, स्वास्थ्य, आसन प्राणायाम आदि । इससें पत्रिकाएं रोचक बन जायंगी। इतने विषयों का एक साथ समावेश तो कठिन है।

परन्तु यदि इनका साप्ताहिक अंको में समय निर्धारण कर दिया जाय तो समस्या हल हो सकती है। यथा महीने के प्रथम सप्ताह अमुक २ विषय प्रकाशित करने हैं। और द्वितीय सप्ताह में अमुक। इस प्रकार चार सप्ताहों में विषयों का विभाजन किया जा सकता है। कभी कोंई स्तम्भ प्रकाशित करें, कभी कोई।

६. सम्पादक– आर्य प्रतिनिधि सभाओं की जो पत्रिकाएं निकलती हैं उन के सम्पादक प्रायः सभाओं के मन्त्री बनते हैं। चाहे उन्हें पत्रकारिता या सम्पादकीय अनुभव हो या न हो । वस्तुतः पत्रिका की प्रगति बहुत कुछ सम्पादक पर निर्भर करती है। सम्पादक को यदि पत्रकारिता का अनुभव है, उसमें विद्वत्ता है। उसे सिद्धान्तों का ज्ञान है सहित्यिक परिचय है। लेखन कला का अनुभव है तो पत्रिका को चार चांद लगा सकता है। पं. भारतेन्द्रनाथ सिद्धान्तालंकार के सम्पादकत्व में 'आर्योदय' ने काफी उन्नति की थी । उन्होंने समय २ पर अनेक प्रकार के विशेषांक भी निकालते । उनकी लेखनशैली अत्यन्त प्रभावशाली थी । अतः पत्रिकाओं के सम्पादक सभा के अधीन लेकिन अलग से होने चाहिए जो सम्पादन का कार्य करें। वैसे भी मन्त्री तो बदलते रहते हैं।

७. **निष्पक्षता का अभाव**– आजकल पत्रिकाओं में प्रशंसात्मक लेखों को अधिमान दिया जाता है या ऐसे लेख होते हैं जिनका आलोचना से कोई सम्बन्ध नहीं होता । यदि थोड़ी भी आलोचना हुई तो वह लेख प्रकाशित नहीं होता। अथवा वही बात यदि कोई प्रधान, महामन्त्री या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति लिख दे तो छप जायगी परन्तु उसी बात को साधारण व्यक्ति लिखे तो उसकी कोई महत्ता नहीं होती । यथा यही 'बढ़ते आर्य घटता आर्यत्व' लेख रूप में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु भेजा गया परन्तु कोई भी छापने को तैयार न हुआ । क्योंकि इसमें आर्यो की यथार्थ समालोचना की गई थी साथ ही सुधारात्मक सुझाव भी थे! परन्तु सही तो यह है कि

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

अप्रिय लेकिन हितकारी बोलने और सुनने वाले दोनों ही मिलने कठिन हैं।

चाहिए तो यह कि सम्पादक निष्पक्ष हो और वह यथार्थ समालोचना के प्रकाशन को भी महत्व दे। उस पर अपनी सहमति, या टिप्पणी दे सकता है,

८. **लेखकों को प्रोत्साहन**– सभाओं को चाहिए कि जो निरन्तर पत्रिकाओं में लेख, कविताएं आदि अपनी रचनाएं

भेजते हैं, उन लेखकों को प्रशस्ति पत्र, शाल, अभिनन्दन पत्र, वैदिक सहित्य आदि देकर सम्मानित करें।इस से उत्साहित होकर वे लेखन कार्य को अग्रसर करने में सहायक सिद्ध होगें।

लेखकों के पास सम्मानार्थ पत्रिका निःशुल्क भेजनी चाहिए। परन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता जिन लेखकों की रचनाएं प्रायः छपती रहती हैं उनके फोटों भी प्रकाशित किए जा सकते हैं,विशेष अवसरों पर संक्षिप्त परिचय भी दिया जा सकता है।

९. **गोष्ठी का आयोजन**– पत्रिका को सुन्दर बनाने के लिए वर्ष में एक बार सम्पादक एवं लेखकों की गोष्ठी का आयोजन किया जाय। जिसमें मार्ग में आने वाली कठिनाइयों तथा सुझावों पर चर्चा की जाय जिससें पत्रिका में निखार आए। वर्ष भर में प्रकाशित अंकों की समीक्षा की जाय और आवश्यक सुधार किया जाय।

१०. **संस्कृत शिक्षा का पाठ्यक्रम**– संस्कृत के प्रचार प्रसार के लिए संस्कृतपत्राचार पाठ्यक्रम का प्रारम्भ किया जा सकता है। इससें जो लोग नियमित रूप से संस्कृत का अध्ययन नहीं कर सकते , वे संस्कृत का सामान्य ज्ञान प्राप्त का सकते हैं। जिससे उन्हें मन्त्रोच्चारण करने एवं सामान्यतः अर्थ समझाने में सहायता मिल सकती है।

पत्रिका के ग्राहक बनें और निशुल्क संस्कृत शिक्षा प्राप्त करें। अलग से पाठ भेजने का कोई चक्कर नहीं । हर सप्ताह घर बैठे बिठाए स्वतः शिक्षा मिलती रहेगी। संस्कृत प्रचार का यह सरल साधन है।

११. प्रतियोगिताओं का आयोजन— पत्रिकाएं विभिन्न आर्य सिद्धान्तों पर निबन्ध, कहानी, कविता आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन कर सकती हैं। यथा ईश्वर साकार है या निराकार । पक्ष विपक्ष में छात्र– छात्राओं के निबन्ध विद्यालय के प्रधानाचार्य से प्रमाणित किए हुए आमन्त्रित करें। निबन्ध लगभग ५०० शब्दों में हो । प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान पर विजयी छात्रों को क्रमशः २५,२०,और १५ रूपये का आर्य साहित्य पुरस्कार स्वरूप करें। इनके अतिरिक्त अन्य प्रशंसित निबन्ध सान्त्वना रूप में प्रकाशित किए जा सकते हैं। उनहे गायत्री मन्त्र या महर्षि दयानन्द का चित्र उपहार रूप में दिया जा सकता है । भाग लेने वाले छात्रों के नाम प्रकाशित किए जा सकते हैं।

इसी प्रकार अन्य अनेक विषय हो सकते हैं जिनका चयन करके तिथि निर्धारण के पश्चात इसकी सूचना पत्रिका में प्रकाशित की जाय। जिन स्कूल, कालेजों में पत्रिका जाती हो, वहां के प्रधानाचार्यों से सहयोग के लिए प्रार्थना की जाय। आर्य समाजों के अर्न्तगत ही स्कूल चलते

पूरा कर लेगा और अगली पंक्ति का उच्चारण भी साथ २ हो सकेगा।

हवन करते हुए कई सज्जन स्वाहा तक तो मन्त्र का उच्चारण करते हैं लेकिन इदन्न मम० आदि का उच्चारण नहीं करते और अगला मन्त्र प्रारम्भ कर देते हैं। जिसके कारण दूसरा व्यक्ति जिसने स्वाहा के बाद इदन्न मम आदि का उच्चारण किया और सांस ली, इतने में वह पीछे रह गया-क्योंकि इदन्न मम न बोलने बाले सज्जन ने पहले ही मन्त्रोच्चारण प्रारम्भ कर दिया था। अतः ऐसा करने से लोगों का मन्त्रोच्चारण करते हुए आगें पीछे होना स्वाभाविक है।

इस कमी को दूर करने के लिए सभी को मिल कर पुरोहित के पीछे बोलना चाहिए । स्वयं आगें न चलें। निश्चित स्थान पर अवश्य रूकें।

यदि यह नहीं ध्यान रहता कि कहां रूकना है तो सन्ध्या हवन की पुस्तक साथ रखें और उसमें निशानी लगा लें, जहां पर रूकना है। ऐसा करने से शीघ्र ही उच्चारण शुद्ध हो जायगा।

इसी प्रकार हवन की अशुद्धियां अगले आयोजन में दूर करें । वेदपाठ का कार्यक्रम बनाया जा सकता है। जिससे शुद्ध उच्चारण का अभ्यास हो । कभी कभी शुद्ध

समय छात्रों की परीक्षाओं का अवश्यध्यान रखा जाय जो आयोजित तिथियों में न पड़ें । फरवरी से अप्रैल के मध्य प्रायः वार्षिक परीक्षाएं होती हैं।

१६. पुनरीक्षण— जहां हम विभिन्न माध्यमों से प्रचार करने, सुनने एवं ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं, वहां इस बात की भी आवश्यकता है कि हम इस संबंध में रेफ्रेशर कोर्स के रूप में वर्ष में एक बार एक सेमीनार आयोजित करें। यह आवश्यकतानुसार कई दिनों का हो सकता है। इस आयोजन में हम अपनी याद की गई संध्या की पुनरावृत्ति करें। पुरोहित जी के सान्निध्य में बैठ कर अपना उच्चारण शुद्ध करें। यद्यपि हमें सन्ध्या याद होती है , हम बोलते भी हैं परन्तु फिर भी बहुत सी अशुद्धियां रह जाती हैं। जिनका स्वयं को पता नहीं चलता । अतः इस अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी अशुद्धि को दूर करने का प्रयत्न करें।

कई लोग बिना रूके ही बोलते चले जाते हैं। वह विरामादि का ध्यान ही नहीं रखते जिससे सभी के मिलकर उच्चारण करने की एकरूपता नष्ट हो जाती है और अपनी ढपली अपना राग जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है। अतः उच्चारण के समय जल्दी न करें। जहां विराम आए ठहरें। यदि दूसरा व्यक्ति पीछे रह गया है तो वह भी मन्त्रोच्चारण

हैं अतः उसके अधिकारीगण भी सहयोग करें तो कार्य सरल हो सकता है। विद्यालयों के अतिरिक्त भी जो बालक भाग लेना चाहे वह आर्य समाज के प्रधान/मन्त्री से प्रमाणित करा कर निबन्ध भेज सकता है।

निर्धारित विषय के अनुसार स्वाध्याय हेतु पुस्तकों का भी उल्लेख किया जाय कि अमुक प्रतियोगिता के लिए अमुक पुस्तकों का स्वाध्याय करें । यदि छात्रों को पुस्तकें उपलब्ध न हों तो उन तक पुस्तकें भेजने का प्रबन्ध किया जाय। इसके लिए आधे मूल्य पर प्रचार हेतु भेजना उपयुक्त रहेगा। संबंधित विषयों की पुस्तकें न मिलीं तो छात्र इससे विमुख होते जायेगें और प्रतियोगिता का आयोजन विफल हो जायेगा।

सामयिक विषयों को भी प्रतियोगिता में सम्मिलित किया जा सकता है। यथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली के गुण दोष, बढ़ता फैशन –कितना उचित कितना अनुचित , धर्म के प्रति उदासीनता–कारण और निदान,–धर्म और विज्ञान – कितने पास कितने दूर, वर्तमान शिक्षा प्रणाली में धर्म एवं नैतिक शिक्षा का महत्व इत्यादि। इस प्रकार प्रतियोगिताओं का आयोजन प्रचार का एक अच्छा माध्यंम बन सकता है। परन्तु आयोजन की तिथि निर्धारित करते

उच्चारण के लिए सामान्य संस्कृत शिक्षा का कार्यक्रम भी आयोजित करना चाहिए। इससे लोगों को संस्कृत के सामान्य शब्दों का ज्ञान हो सकेगा ।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास में खानपान (मक्ष्याभक्ष्य) पर प्रकाश डाला है। अनेक आर्य इससे अनभिज्ञ हैं अतः एक आयोजन में भक्ष्याभक्ष्य विषय पर चर्चा की जाय और अभक्ष्य चीजों का सेवन करने वाले लोग यह निश्चय करें कि भविष्य में वे इसका सेवन नहीं करेगें। अपितु हमेशा के लिए इसका त्याग कर देगें। लेकिन इस बात का ध्यान रखें—

एक बार एक महात्मा जी उपदेश कर रहे थे— क्या चीज सेवन करनी चाहिए , क्या नहीं। अभक्ष्य चीजों के तमाम दोषों का वर्णन किया और भक्ष्य चीजों के गुण बताए। अन्त में उन्होंने एक—एक से पूछना शुरू किया कि तुमने क्या छोड़ा। तुमने क्या छोड़ा। किसी ने कहा-मैंने बीड़ी पीनी छोड़ दी,किसी ने उत्तर दिया-मैंने शराब पीनी छोड़ दी जिसमें जैसा दुर्गुण था, उसने वैसी ही चीज को छोड़ने का वचन दिया। अन्त में तब एक व्यक्ति की बारी आई तो महात्मा जी ने उससे पूछा — तुमने क्या छोड़ा उस व्यक्ति ने कहा—' मैने सत्संग में आना छोड़ दिया।'

कहीं आप भी ऐसा ही न करें कि आर्य समाज में आना ही छोड़ जायं। देखो , यदि आर्य बनना है तो दोषों को छोड़ना ही पड़ेगा। दो किश्तियों में पैर रख कर इस संसार सागर से पार नहीं हो सकते । इसके लिए तो आर्यत्व को धारण करना होगा, तभी कल्याण हो सकता है।

यदि एक बार निश्चय कर लिया कि यह दुर्व्यसन छोड़ना ही है तो कोई कारण नहीं कि इससे सफलता न मिले । इस कीचड़ से निकलों। अभी चन्द भी तो इस कीचड़ से निकल गया था । तो आप क्यों नहीं निकल सकते। बस कमी है तो निश्चय की।

जिसने लगाई एड़ वो खन्दक पार था– अतः अभी से निश्चय करों । शुभ काम में देरी क्या –

बीती सो बीती लेकिन, बाकी उमर संभालू मैं।
हूं शर्मिन्दा आपसे, क्या बतलाऊं मैं।।

यज्ञोपवीत धारण करने की प्रथा प्रायः समाप्त हो चली है। अतः ऐसे आयोजन करके उनके महत्व पर प्रकाश डाला जाय और यज्ञोपवीत धारण करने के लिए प्रेरित किया जाय। लेकिन यज्ञोपवीत धारण करने वाले मद्य–मांस–धूम्रपान आदि का सेवन करने वाले न हों, भविष्य में न सेवन करने का निश्चय करें।

ऐसा इसलिए भी किया जाना आवश्यक है क्योंकि बहुत से लोग ऐसे हैं जो महर्षिदयानन्द को भी उसी श्रेणी में रख लेते हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया होता। जिससे वह दोनों में अन्तर स्थापित नहीं कर पातें। तुलनात्मक अध्ययन के लिए आर्य समाज के पुस्तकालय में सभी प्रकार की पुस्तकों का होना आवश्यक है।

इन बातों को पुनरीक्षण के अन्तर्गत इसलिए रखा गया है क्योंकि यह बातें बार-बार दुहराने की हैं। जब हम इन्हें बार-बार दुहरायेंगे तभी हमारे विचार परिपक्व बनेंगे। एक बार कहने सुनने से विचार सुदृढ़ नहीं होते।

अतः हम सबका परम कर्त्तव्य है कि ह्रासोन्मुख आर्यत्व की रक्षा हेतु हम सभी सदैव तत्पर रहें। इसी में हम सब का कल्याण है। अस्तु।

वेद सप्ताह के अवसर पर

हुआ वेदों का प्रचार

करने ज्ञान का संचार, हुआ वेदों का प्रचार।
गावो सब मंगलाचार, जी बधाई होवे ।। 1 ।।
प्रभु का करते गुणगान, जो देता है वरदान।
वह सबका सिरजनहार, जी बधाई होवे ।। 2 ।।
कितना मन को भाए, जब सब लोग आए।
स्वागत करता यह परिवार, जी बधाई होवे ।। 3 ।।
हुआ है यज्ञ–हवन, करके प्रभु को नमन।
जो है वेदों का सार, जी बधाई होवे ।। 4 ।।
करके सबका मान, हुआ है वेदों का गान।
बरसी अमृत की धार, जी बधाई होवे ।। 5 ।।
वेदवाणी धार के जाना, घर घर में प्रचार करवाना।
सुखी रहें सब परिवार, जी बधाई होवे ।। 6 ।।
"वेद" कहे पुकार पुकार, होगा उसका बेड़ा पार।
जो करता है प्रभु से प्यार, जी बधाई होवे ।। 7 ।।

–वेद प्रकाश शास्त्री
कैलाश नगर, फाजिलका (पंजाब)